संक्षिप्त गीता सार

स्वामी निरंजन

संक्षिप्त गीता सार

स्वामी निरंजन

प्रकाशक : **निरंजन बुक् ट्रष्ट**

प्रथम मुद्रण : होली, २०१६

मुद्रण एवं अलंकरण : **दिव्य मुद्रणी,** प्लट नं : **58/60**,
दिव्य विहार, सामन्तरायपुर, भुवनेश्वर-2 (उड़िशा)
फोन नं : **9437006566, 9937844884**

मूल्य : **रु** 15/-

ॐ श्री परमात्मने नमः

अनन्त नाम रूप में अभिव्यक्त स्वात्म स्वरूप सकल चराचर वृन्द अहमत्वेन प्रस्फुरित महामहिम एवं समुपस्थित आत्म जिज्ञासुगण–

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत् ।

अनादि काल से अविद्या की घोर निद्रा में सोने वाले भव्य जीवों ! उठो ! एवं स्वरूप आत्मा में जागो और किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ महापुरुष की शरण में जाकर अपना आत्म कल्याण करलो । यह मानव जीवन बड़े भाग्य से मिला है । मानव जीवन का यही चरम लक्ष्य है । यदि इस महत्वपुर्ण कार्य की तरफ से उदासीन हो गये तो फिर हमने मानव जीवन की महत्ता और योग्यता को खोकर पशुता को ही स्वीकार कर लिया है ।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।

– २/७ गीता

अर्जुन ने कहा – हे प्रभो ! मैं नहीं जानता हूँ कि किस कर्म के करने से पुण्य है और किस कर्म से पाप होता है । इसलिए कायरता दोष से मेरा मन ग्रसित होने के कारण मैं अच्छी तरह निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ कि क्या करूँ व क्या न करूँ ?

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बंधु च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।

आप मेरे सर्वस्व है । अत: जो साधन निश्चित रूप से मेरे लिये कल्याण कारक हो, वह मेरे लिए कहिये । मैं आपका शिष्य हूँ।

असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मामृतं गमय । – १/३/२८ बृह. उप.

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।

– १/२/१२ मुण्डक उप.

मुक्ति के इच्छुक वाले ब्राह्मण को किंचित् भी कर्म करना जरूरी नहीं है । क्योंकि अनित्य कर्म–उपासना के द्वारा नित्य परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकेगी । नित्य परमात्मा की प्राप्ति तो केवल आत्मज्ञान से ही हो सकेगी । उस आत्मज्ञान को पाने के लिये उसे किसी श्रोत्रिय–ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाना होगा ।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्षन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।

– ४/३४ गीता

उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानी सद्गुरु के पास जाकर समझ, उनको भली भाँति दण्डवत् प्रणाम कर उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलता पूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म तत्त्व को भली भाँति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे ।

तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।

– १८/६२ गीता

हे भारत ! तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा उस परमात्मा की कृपा से ही तू परम शान्ति को तथा सनातन परमधाम को प्राप्त हो सकेगा ।

हे आत्मन् ! तू न तो शरीर है न प्राण है, न मन, बुद्धि आदि प्रपंच है । तू अपने को, पंच भूतों व उनसे निर्मित स्थूल, सूक्ष्म शरीर के साक्षी रूप में जान । मुक्ति हेतू साक्षी बोध के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था
विद्यतेऽयनाय' –३/८ श्वेताश्वतर उप.

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।।

– २/११ गीता

श्रीभगवान बोले – हे अर्जुन ! तू मृत्यु भय के चिन्तन में डूब रहा है, इसलिए धर्म–अधर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ निर्णय नहीं कर पारहा है । तू शोक न करने योग्य शरीर के प्रति शोक करता है । किन्तु ज्ञानीजन जिनके प्राण चले गये हैं अर्थात् जो मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, उनके लिये शोक और जो अभी जीवित हैं उनके लिये मोह नहीं करते हैं ।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।।

– ६/१६ गीता

हे अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खाने वाले, गरीष्ठ खाने वाले को, अशुद्धाहार करनेवाले को, न भूखे मरने वाले को, न बहुत शयन करने वाले को, न बहुत जागने वाले को, न अधिक कर्मरत रहने वाले को न

आलसी व्यक्ति को ही सिद्ध होता है । अतः समता में ठहरना ही योग है । ''समत्वं योग उच्यते ।''

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।

– ६/१७ गीता

दुःखों का नाश व परमात्मा की प्राप्ति का साधन ज्ञान योग तो यथायोग्य आहार–विहार करनेवाले को, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करनेवाले को और यथायोग्य सोने तथा जागनेवाले को ही सिद्ध होता है ।

आयुः सत्त्वबलारोग्य सुख प्रीति विवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विक प्रियाः ।।

–१७/८ गीता

जिन आहारों के करने से मनुष्य की आयु बढ़ती है , सत्त्व गुणबढ़ता हो, शरीर, मन, बुद्धि में सात्त्विक बल एवं उत्साह पैदा हो, आलस्यता न हो,स्वास्थ्यवर्धक हो, शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाला हो, जो सुख–शान्ति प्रदायक हो और जिसको देखने से ही मन

में प्रीति हो, ऐसे भोजन के भोज्य, पेय, लेह्य, और चोष्य सात्त्विक मनुष्य को अच्छे लगते हैं ।

कट्वम्ललवणात्युष्ण तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःख शोकामयप्रदाः ।।

– १७/९

कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख, चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करनेवाले आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ राजसिक व्यक्ति को विशेष प्रिय लगते हैं, परन्तु ऐसे पदार्थ परिणाम में दुःख, शोक और रोगों को देने वाले होते हैं ।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।।

– १७/१० गीता

जिनको पूरा पकने के पूर्व अधपके या अधिक पके हुए अथवा जो सड़ गये हैं ऐसे पदार्थों को, फ्रिज में रखे खाद्य सामग्री, रसायनिक द्रव्य से सुरक्षित रखे प्लास्टिक थैलियों में, हवा रहित कर बन्द किये डब्बों में

रखे पदार्थ, सब्जी, फल, मुरब्बा, आचार, सिरका आदि यातयाम् कहलाते हैं ।

रज–वीर्य से पैदा हुए मांस, मछली, अंडा आदि महान् अपवित्र पदार्थ जो छूने योग्य भी नहीं ।

और शास्त्र जिसे निषेध करते हैं, वह मांस, मछली, अंडा, शराब प्याज, लहसुन, छुत्ती आदि ऐसे सभी तामसी भोजन तमोगुणी व्यक्ति को सबसे ज्यादा प्रिय लगते हैं ।

भोजन सात्त्विक होने पर भी क्रोधित होकर खाया जाय, तो तामसिक हो जाता है । राग पूर्वक खाया जाय तो राजसिक हो जाता है ।

बनाने वाले, परोसने वाले एवं जिसकी दृष्टि भोजन पर पड़ती हो, उसे बिना खिलाये स्वयं खा लेना वह तो तामस अन्न हो जाता है ।

सबको खिलाकर खाने वाले श्रेष्ठपुरुष तो पापों से मुक्त हो जाते हैं। किन्तु जो अपने लिये कमाकर, पका कर खाते हैं वे पापी लोग पाप को ही प्राप्त होते हैं अर्थात् अधोगति में जाते हैं ।

जिस साधक का मन, इन्द्रिय व शरीर अपने वश में नहीं है, जो केवल इन्द्रिय विषय भोगों में ही आसक्त रहता है उसकी दुर्गति के लिये वह स्वयं ही शत्रु बनकर अपने जीवन को नष्ट कर रहा है ।

जिस जीवात्मा द्वारा मन, इन्द्रियाँ व शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का वह स्वयं ही मित्र है उस स्वाधीन आत्मभाव वाले साधक के ज्ञान में सच्चिदानन्दघन परमात्मा के सिवा कुछ नहीं रहता है । इस प्रकार वह ब्रह्म को मैं रूप जानने वाला स्वयं ब्रह्म ही होता है । **'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति'** ।

अतः शुद्ध आहार द्वारा निर्मल मन वाला ही परमात्मा की भक्ति करने का अधिकारी हो पाता है ।

शाकाहारी बने व दूसरों को बनावें

प्रकृति ने, कुदरत ने, परमात्मा ने दो प्रकार के प्राणी की रचना की है । एक शाकाहारी दूसरा मांसाहारी ।

मांसाहारी प्राणी के लक्षण १. जन्म के सात दिन बाद आंख का खुलना, २. अन्धकार में भ्रमण करना व आहार खोजना, ३. तीक्ष्ण पंजे, ४. नुकीले दांत (केनाइन टीथ) ५. जीभ से पानी पीना, ६. एसेडिक लार, ७. अन्तनाड़ी छोटी, ८. शरीर से दुर्गन्ध, ९. चलने पर आहट न होना। दसगुना मानव से ज्यादा हैड्रोक्लासिक एसिड गरमी से बचने हेतु जीव बाहार लटकाए अन्दर ठन्डक पहुँचाना ।

आप विवेकवान है तो यह लक्षण अपने में खोजिए यदि उपरोक्त लक्षण अपने में नहीं मिलते हैं तो आज से अभी से शाकाहारी बनिए ।

यदि इतना अन्तर शाकाहारी व मांसाहारी प्राणी का जान कर भी आप अपनी मांसाहार की प्रवृत्ति नहीं छोड़पाते हैं तो कोई बात नहीं। तो बताईए आप अपने को समझदार मानते है या नासमझ ? समझदार मानते है तो शुद्धाहार खाना पसन्द करेंगे या अशुद्ध ? ताजा पसंद करेंगे या बासी ? आपका उत्तर होगा शुद्ध एवं ताजा।

तो फिर इन गन्दे आहार करनेवाले रोग ग्रसित पशुओं का मांस क्यों पसन्द करते हैं ? अपने ही पैदा होनेवाले पुत्र-पुत्री का, पत्नी-पति का या पिता-माता का ताजा, शुद्ध मांस खाना तो अवश्य पसन्द करेंगे न? ३, ४, ५, ६ माह का भ्रूण को निकाल कर खाना अवश्य पंसद करेंगे ? नहीं। कभी नहीं। यह बात हम सुनना भी पसन्द नहीं करेंगे क्योंकि हमें उनसे प्यार है और वह भी हमारे कूकृत्य को स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि उनको अपना जीवन प्रिय है। तो सज्ञनों ! नर-नारियों ! किसी भी जीव को मृत्यु प्रिय नहीं। इसलिये केवल एक जिह्वा लालसा के

लिए किसी का जीवन छीन लेना यह क्रुरता की, असुरता की, अमानवता की, पाप की हद हो गई।

यदि यही प्रकृति आपकी रही तो फिर तो आप बड़े बहादुर हैं जो उन कुत्ते, बन्दर, बाघ, बिल्ली, चूहा, मेढक, सांप, अजगर, लोमड़ी, कंगारु, कौआ चीलादि योनियों में जाकर इस भोजन को अमुल्य मानव जीवन की कीमत चुका कर सहज प्राप्त करने को सहर्ष प्रस्तुत हो चुके हैं।

क्योंकि यह प्रकृति का नियम है कि जो जिस आहार में रूचि रखता है, मरकर उस योनि में पहुँचा दिया जाता है।

अतः जीने के लिए भोजन करें किन्तु खाने के लिए जीवन न बचावे।

तुम जानवरों का मांस खाकर जानवर योनि में जाने के बजाय मनुष्य को मारकर उनका मांस खाने लगोगे तो तुमको ज्यादा स्वादिष्ट लगेगा क्योंकि मनुष्य पत्नी, बच्चे कितने सुन्दर और मधुर होते हैं।

याद रखो ! जिनका हम मांस खाते है उनमें से कोई एक जन्म में वह हमारा पुत्र, पुत्री, पत्नी, पति, माता–पिता, भाई–बहन अवश्य ही इस ८४ लाख यानियों की यात्राकर रहा होगा, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं है।

शाकाहारी प्राणी जीवन पर्यन्त अपने आहार का त्याग कर या न मिलने पर भूखे तड़फ–तड़फ कर मर जाना पसन्द करेंगे पर मांसाहार को ग्रहण नहीं करते हैं। मानव के लिए शाकाहारी सैकड़ो भोजन पदार्थ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हुए भी मांसाहार को ग्रहण करना यह तो पशुता से भी हीनता की प्रकृति है ।

यदि आप ऐसा मानते हैं कि हमारे द्वारा जिन पशुओं की हत्या हो जाती है वे मरकर स्वर्ग में जाकर अमर हो जाते हैं । तो भाई! यह बात पर तुम विश्वास करते हो तो शीघ्र से अपने स्वर्ग अभिलाषी माता पिता को अवश्य मार, पका, खाकर उन्हें भी स्वर्गवासी क्यों नहीं बनाकर पुण्य का भागी बनते हैं ।

यदि आप यह कहते हैं कि हम पशुओं को मारकर नहीं खावेंगे तो मनुष्य को पृथ्वी पर रहने की जगह नहीं

मिलेगी। आप चिन्ता क्यों करते है वह हिंस्त्रक पशु मनुष्य को मारकर उनके जीवन निर्वाह हेतु पर्याप्त भूमि बनाये रखेंगे। आप मरना पसन्द क्यों नहीं करते हैं ? तुम्हारे जीने का क्या लाभ ? जो तुम अपने जीने के लिये दूसरों को मारना चाहते हो। तुम पृथ्वी से चले जाओगे तो क्या हानि है तथा जीने से क्या ?

जिसे तुम उत्पन्न करते हो उसे भी मारने का अधिकार तुम्हें नहीं। तब जिसे अत्पन्न नहीं किया उसे तो मारने का अधिकार कैसे हो सकेगा।

यह समस्त संसार परमात्मा का परिवार है। उन्हें मन, वचन, कर्म से सुख पहुँचाना परमात्मा की ही सेवा, पूजा, प्रसन्नता एवं आशिर्वाद प्राप्त करना है। पाषाण, धातु, मिट्टी, मूर्ति की पूजा तो छोटे नासमझ बच्चों के गुड़ा–गुड़िया का खेल है। समझदारों का काम नहीं। याद रखें ! परमात्मा की सन्तान को मार पका खाकर परमात्मा की प्रसन्नता, आशिर्वाद प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

यदि दूसरे प्राणी को मारकर असहनीय पीड़ा दिलाकर अपना मन व जीवन असहनीय पीड़ा पर निर्भर करता है तो जैसा बोया जायेगा वैसा ही फल काटना होगा । मारे जाने वाले पशु को मारनेवाले के अति भयंकर क्रोध, असहनीय दुःखद वेदना होने से उसके मांस व रक्त में भय से उत्पन्न हारभोन्स मानसिक तनाव बदले की भावना की तरंगे फैल जाती है, जो तुम्हें भयंकर दुर्घटना, बीमारी का निमन्त्रण दे रहा है । यह तुम्हे अगले जन्म में अवश्य स्वीकार करना होगा ।

अपने पेट को जो परमात्मा का, शान्ति का, सुख का मन्दिर है उसे कबरखान न बनावें ।

मुर्दे का स्पर्श कर लेने से अपने को अपवित्र समझनेवाला व्यक्ति, मूर्दे पशु का मांस खाकर कैसे पवित्र होने का स्वप्न देखता है ।

पशुओं का रक्त, मांस खानेवालों ! अपना ही रक्त, नाक व मुख से अपने भोजन भात, रोटी, दाल आदि पर गिर जाने पर उसे क्यों त्याग कर देते हो ? शुद्ध रक्त मिश्रित भोजन क्यों नहीं खा लेते हो ?

बकरी, मुर्गा खाने वालों ! फल, मैदा, आटे में छोटे छोटे इल्ली, कीटाणु देखने पर क्यों फेंक देते हो, खा क्यों नहीं लेते हो ? वह भी तो मांस का अंश है ।

तुम्हें जैसे पशु मांस शक्ति के लिये उपयोगी है तो मेरे पिता–माता को या तुम्हारे पड़ोशी शत्रु को शक्ति हेतू तुम्हारे मांस की जरूरत है । बोलो, उनकी मांग पूरी करोगे न ? समाज कल्याण के ठेकेदार प्राणी की रक्षा करनेंवाले अहिंसा के पुजारी,भारत माता के सुपुत्र अपने भाई–बहन का मारकर खाने वालो राक्षासों तुम्हारी क्या दुर्दशा होगी इसका भी मरने के पहले कभी विचार करना ।

क्या लाभ होगा ?

- एक मांसाहारी मानव अपने जीवन में 37,000 पशुओं की हत्या का पाप अपनी जिह्वा लालसा के लिए संग्रह करलेता है।
- अपने जीवन से मांसाहार त्यागने वाला व्यक्ति 37,000 पशुओं के प्राण रक्षा का पुण्य संग्रह कर लेता है।
- अतः स्वयं शाकाहारी बनो व कम से कम 10 व्यक्तियों को शाकाहारी बनावे।
- यह निर्दोष मूक प्राणियों के लिए हम विचार नहीं करेंगे तो ये अपने मन के दुःख को किसके आगे प्रकट कर सकेंगे ?

■

आसुरी व्यक्ति की प्रकृति

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ।।

–१६/१२ गीता

जो आकाश गमन, संकल्प से वस्तु उत्पन्न करने की, भूमि में छिपे धन को देखने की सिद्धि प्राप्त करने में आग्रह रखते हैं, जो आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे बँधे हुए मनुष्य काम–क्रोध परायण होकर पदार्थोंका भोग करने के लिये अन्याय पूर्वक धन–संचय करनेकी चेष्टा करते रहते हैं –

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।

–१६/१३ गीता

वे इस प्रकारके मनोरथ किया करते हैं कि – इतनी वस्तुएँ तो हमने आज प्राप्त करली है, अब इस मनोरथको पूरा करना है । इतना धन तो हमारे पास है ही और इतना धन फिर प्राप्त करना है ।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ।।

–१६/१५ गीता

वे सोचते हैं कि हम धनवान् हैं तथा दूसरों को यज्ञ, तप, दानादि करते देख एवं सम्मान पाते देख कर इर्षालु होते हैं । बहुत–से मनुष्य हमारे पास आधीन रहते हैं, हमारे समान दूसरा कौन है ? हम खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे और मौज करेंगे–इस तरह वे अज्ञानसे मोहित रहते हैं ।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।

–१६/१६ गीता

नित्य प्राप्त सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा को न खोज एवं देहाभिमान में रत अनेक कामनाओं के कारण तरह–तरहसे भ्रमित चित्तवाले होते हैं । सत–असत्, विवेक ज्ञान रहित, मोह–जालमें अच्छी तरहसे फँसे हुए तथा पदार्थों और भोगोंमें अत्यन्त आसक्त रहनेवाले मनुष्य

लार, कफ, मल, रक्त, रज, वीर्य, पीप नरक रूप देह में अत्यन्त आसक्त हो महान् कष्ट को भोगते रहते हैं ।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।।

–१६/१७ गीता

श्रेष्ठ पुरुषों, सन्त व शास्त्रों को न मानने वाले वे अपने को पुज्य कहलाने की इच्छा रखने वाले घमण्डी पुरुष धन व मान के मद से युक्त रहते हैं । वे लोग शास्त्र विधि से रहित अर्थात् सात्त्विक श्रद्धा सामग्री दान तप से रहित अपवित्र विचार द्वारा किये केवल नाम मात्र के यज्ञ द्वारा पाखण्ड से यजन करते हैं ।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।।

–१६/१८ गीता

मुझसे श्रेष्ठ धर्मी, भक्त, दानी, ज्ञानी, कर्मी, सदाचारी, सम्मानित कोई नहीं है । ऐसे अहंकार, हठ, घमण्ड, कामना और क्रोधका आश्रय लेनेवाले मनुष्य

अपने और दूसरोंके शरीरमें रहनेवाले मुझ सच्चिदानन्द रूप अन्तर्यामी आत्मा के साथ द्वेष करते हैं । तथा मेरे और दूसरों के गुणों में दोष दृष्टि रखते हैं । अर्थात् देह इन्द्रिय से भिन्न आत्मा को नहीं जानते हैं ।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।

–१६/१९ गीता

उन द्वेष करनेवाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बार–बार आसुरी योनियों में ही डालता हूँ ।।

आसुरी योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मानि जन्मानि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ।।

–१६/२० गीता

हे अर्जुन ! वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर ही जन्म–जन्ममें आसुरी योनि को ही प्राप्त होते हैं, फिर उससे भी अती नीच गति को ही प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकों में पड़ते हैं ।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।

–१६/२१ गीता

काम, क्रोध तथा लोभ – ये तीन प्रकार के नरक के द्वार अर्थात् सब अनर्थ का मूल एवं आत्मा का नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले है । अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिये ।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।

–१६/२३ गीता

जो मनुष्य शास्त्र विधिको छोड़कर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि अर्थात् अन्तःकरणकी शुद्धि को, न सुख शान्ति को और न परम गतिको ही प्राप्त होता है ।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।

–१६/२४ गीता

अतः तेरे लिये कर्तव्य–अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है– ऐसा जानकर तू इस लोकमें शास्त्रविधिसे नियत कर्तव्य–कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्र विधिके अनुसार ही कर्तव्य–कर्म करना चाहिये ।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।।

–१७/५ गीता

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।।

–१७/६ गीता

जो मनुष्य शास्त्र विधिसे रहित सत्यासत्य, नित्यानित्य विवेक रहित मन कल्पित कर्म करने वाले हैं, जैसे स्नान न करना, अग्नि पर चलना, बर्फ में बैठना, नंगे पैर धूप में चलना, कान, आँख को बन्द रखना, मौन बने संकेत से या लिखकर बात करना, काटें पर शयन करना, जीभ काट मूर्ति पर चढ़ाना, फल, जल, पत्र

खाकर रहना या मुर्दे का मांस खाना, मल खाना, एक हाथ से काम करना, एक पैर से खड़े रहना, नेत्र दृष्टि से दर्पण तोड़ देना, किसी की मृत्यु हेतु अघोर कर्म करना आदि घोर कष्टप्रद तप को तपते हैं । वे दम्भ व अहंकार से युक्त अपने यश, कीर्ति, नाम प्रचार हेतु अधार्मिक होते हुए भी अपने को धार्मिक चिह्न, राम नाम की चादर, गले में बड़ी मोटी रुद्राक्ष माला, हाथ में दण्ड, कमण्डल व धर्म शास्त्र, बड़े लम्बे तिलक, विभुति, मृग, बाघाम्बर लपेटना या आसन पर बैठना, जटा, दाढ़ी, मूंछ आदि धारण कर कामना और आसक्ति बल के अभिमान से फूले रहते हैं ।

वे शरीर रूप से स्थित पंच भूतों और अन्तःकरण में स्थित मन, बुद्धि, अहंकार रूप मुझ साक्षी आत्मा को ही कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को तू आसुरी स्वभाव वाला जान ।

श्री भगवान् का उपदेश

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।।

– ४/५ गीता

श्री भगवान् बोले – हे परंतप अर्जुन ! मेरे व तेरे द्वारा बहुत देह धारण किये जाचुके हैं । परंतु तू उन समस्त ग्रहण–त्याग किये देहों को नहीं जानता है, क्योंकि तेरी बुद्धि बहुत अल्प है, किन्तु उन देहों का ग्रहण–त्याग मैं जानता हूँ ।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ।।

– ४/२ गीता

हे परंतप अर्जुन ! गुरु शिष्य परम्मरा से प्राप्त इस ज्ञान योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु उसके बाद वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक से प्रायः लुप्तसा हो गया ।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।।

– ४/३ गीता

तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग आज मैं तुझको कहता हूँ, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है ।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।

– २/१२ गीता

न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में– नहीं था, तू नहीं था कि ये संसारके प्राणी नहीं थे और न ऐसा ही है कि यह सब और हम तुम न रहेंगे । क्योंकि जीव मेरा सनातन अंश होने से उस की कभी मृत्यु नहीं होती है ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।।

–२/१६ गीता

असत् वस्तु रूप यह देह की तो सत्ता ही नहीं है, जैसे घड़ा, सुराही, दीपक, ईंट मूर्तियाँ नाम मात्र आकृतियाँ

है, सत्ता तो मिट्टी धातु की है जैसे समस्त आकारों में मिट्टी सदा विद्यमान रहती है। इसी तरह सत् वस्तु आत्मा का कभी नाश या अभाव नहीं होता है । आत्मा सत् वस्तु है, जो कभी किसी काल में नष्ट नहीं होती है । उससे कभी किसी जीव का वियोग नहीं होता है । जहाँ भी यह जीव जाता है उसका परमात्मा से सदा रेल पटरी की तरह नित्य संयोग बना ही रहता है ।

न जायते म्रियते वा कदाचि–
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो–
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।। –२/२० गीता

यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है । यह आत्मा अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है शरीर के नष्ट होने पर या मर जाने पर यह, आत्मा कभी नहीं मरता है । जैसे घट नाश से घट स्थित आकाश का कभी नाश नहीं होता है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

–२/२३ गीता

इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता और वायु सुखा नहीं सकता ।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ।।

–२/२१ गीता

जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसे मरा मानता है, वे दोनों नहीं जानते हैं । वास्तव में यह आत्मा न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है ।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।

–२/१८ गीता

यह अजन्मा अविनाशी आत्मा इन्द्रिय विषयों की तरह ग्रहण नहीं किया जा सकता है । इसलिये इसे

अप्रमेय कहा जाता है तथा इस शरीर को अन्त वाला अर्थात् नाश रूप कहा है ।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

–२/२७ गीता

क्योंकि यह प्रकृति का सर्वव्यापक अकाट्य सिद्धान्त है कि जो भी पदार्थ हो या प्राणियों के शरीर हो, जन्मने वाले देहों की आगे–पीछे नाश होना निश्चित है और मरे हुएका आत्मज्ञान के पूर्व तक जन्म–मृत्यु भी निश्चित चलता रहता है ।

भक्तगण ! राम का जन्म मनाते हैं, कृष्ण का जन्म मनाते हैं। यदि जन्म दिन न मनाते तो उनके मरने की कल्पना भी नहीं करना पड़ती। अतः इन जन्मोत्सव मनाने वालों की श्रद्धानुसार उन भगवान को मरना भी पड़ता है । यह जन्मोत्सव मनाने वाले सभी भक्त भगवान् के हत्या करने वालों की श्रेणी में है ।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ।।

–२/२६ गीता

यदि तू इस आत्मा को अर्थात् अपने आपको सदा जन्मने वाला तथा सदा मरने वाला मानता है, तो भी चिन्ता करने का कोई कारण नहीं, क्योंकि यह प्रकृति का नियम है कि जन्मने वाले की मृत्यु निश्चित है ।

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलःशिवः ।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत् ।।

१० स्कन्दोपनिषद

यह देह तो आत्म देव के अनुभव करने का मन्दिर है । इसमें विराजित चैतन्य देव ही शिव रूप है । अतः देह अहंकार त्याग कर वह परमात्मा मैं हूँ ऐसा निश्चय से जानो ।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

–२/३० गीता

हे अर्जुन ! यह हमारा तुम्हारा आत्मा शरीरों में सदा अमृत, अवध्य अविनाशी है इसलिये तू किसी भी जीव के लिये शोक मत कर । यह जीवात्मा ईश्वर अंश होने से यह भी सच्चिदानन्द ही है ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा –
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

–२/२२ गीता

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नूतन वस्त्रों को धारण करता है वैसे ही यह जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर नूतन शरीर को प्राप्त होता है ।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।

–२/१३ गीता

जैसे इस देह की बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यूवा अवस्था, प्रोढ़ अवस्था, वृद्धावस्था की प्राप्ति अपने–

अपने समय में होती रहती है, उसे रोकने या बदलने में आजतक कोई समर्थ नहीं हुआ । इसी प्रकार सभी जीवों के शरीर मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते हैं । अत: इसमें शोक करना यह प्रकृति के विधान को अस्वीकार करना है ।

अत्यन्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः ।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते।।

२/६७ मुक्तिक उप.

यह देह तो अत्यन्त मलिन है और देह में रहनेवाला आत्मा नित्य निर्मल, नित्य शुद्ध, नित्य पवित्र है । इस प्रकार देह एवं देही दोनों का भेद जानने वाला किसकी शुद्धि के लिये चेष्टा करेगा ? क्योंकि देहशुद्ध हो नहीं सकता एवं आत्मा कभी मलिन हो नहीं सकती । अतः दोनों के लिये कोई कर्तव्य नहीं है ।

वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा ।
मलिना जन्महेतुः स्याच्छुद्धा जन्मविनाशिनी।।

२/६७ मुक्तिक उप.

वासनाएँ दो प्रकार की कही जाती है। शुद्ध वासना तथा मलिन वासना। मलिन वासना जन्म का कारण बनजाती है। शुद्ध वासानाएँ जन्म के विनाश का कारण बन जाती है।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ।।

–९/२ गीता

हे अर्जुन ! यह विज्ञान सहित ज्ञान सब विद्याओं का राजा, सब गोपनीयों का राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फल वाला धर्म युक्त, साधन करने में बड़ा सुगम और अविनाशी है ।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।।

–१४/२ गीता

इस ज्ञान को धारण कर मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होते और प्रलय काल में भी व्याकुल नहीं होते हैं।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ।।

९/३ गीता

परन्तु हे अर्जुन ! मेरे इस ज्ञानामृत रूप उपदेश में जो अज्ञानी पुरुष अश्रद्धा करता है अर्थात् परमात्मा को अपने से पृथक् व अपने को कर्ता–भोक्ता रूप जीव जानता है तथा देहाभिमान करता है, वह परमात्मा को प्राप्त न कर जन्म–मरण के बन्धन को भोगता रहता है ।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन –
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।।

–२/२९ गीता

हे अर्जुन ! कोई एक महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता है और वेसे ही कोई दूसरा महापुरुष इस निजात्मा को आश्चर्य की तरह से वर्णन करता है, तथा कोई एक ही इस आत्मा को आश्चर्य की

तरह श्रवण करता है । इतना होने पर भी कोई एक इस आत्मा को मैं रूप से जान पाता है ।

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।।

७/३ गीता

हजारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियों में भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्व से अर्थात् यथार्थ रूप से जानता है ।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायंलोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।।

– ४/४० गीता

विवेकहीन और श्रद्धा रहित मनुष्य परमार्थ पथ से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है । ऐसे संशय युक्त मनुष्य के लिये न यह लोक है न परलोक है और न सुख ही है ।

उद्धरेदात्मनात्मनं नात्मनमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।

– ६/५ गीता

अस्तु हे आत्मन् ! अपने द्वारा अपना संसार समुद्र से उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है ।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।

– ६/६ गीता

जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये वह आप ही शत्रु के सदृश अपने को शत्रुता में बर्तता है ।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।

–८/१६ गीता

हे अर्जुन ! साधन भक्ति करने वाले भक्तगण तो अपने कल्पित देवलोक को जाकर पुण्य समाप्त होने पर

पुनः लौट आते हैं, किन्तु आत्मज्ञानी का पुनर्जन्म नहीं होता है ।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमि ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।

–२/६९ गीता

सम्पूर्ण विषयभोगी प्राणियों के लिये जो यह आत्मज्ञान रात्रि के समान है और वे इस आत्मानुभूति की ओर से आँख मूंदपड़े रहते हैं । उस परमानन्द नित्य ज्ञानस्वरूप निजात्मा की प्राप्ति में अर्थात् उसे पाने हेतु योगी जागता है । जिस नाशवान् सांसारिक अनित्य सुख की प्राप्ति में सब प्राणी जागते हैं ज्ञानी लोगों के लिये अनित्य संसार रात्रि के समान है अर्थात् उपेक्षणिय है ।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ।।

२/२५ गीता

यह निजात्म स्वरूप अव्यक्त होने से अचिन्त्य है क्योंकि मन से नाम, रूप वाले वस्तु या व्यक्ति का ही

चिन्तन किया जासकता है । यह आत्मा निराकार, निर्विकार, निर्मल, नित्य शुद्ध है तथा देह षड् विकारी एवं नित्य मलिन स्वभावी है इसलिये उसे कभी शुद्ध नहीं किया जा सकता । अत: दोनों ओर से साधक को चिन्ता मुक्त रहना चाहिये ।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।।

–३/२७ गीता

वास्तव में सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं तो भी जिसका मन देह भाव से जकड़ा हुआ है, कर्तापन के अभिमान के पर्वत पर बैठा है, वह अज्ञानी मैं कर्ता हूँ ऐसा अभिमान करता हुआ ८४ लाख चक्र में बन्धा भटकता रहता है ।

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्श्रृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ।।
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ।।

– ५/८, ९ गीता

अपने आत्मा को मैं रूप से जानने वाला ज्ञानयोगी सुनता, देखता, बोलता, उठता, चलता, सोता, जागता, भोजनकर्ता, सूंघता, सन्तान उत्पत्ति करता, त्यागता, आँख खोलता मूंदता हुआ भी सब इन्द्रियाँ अपने–अपने विषयों का काम कर रही है । इस प्रकार समझकर नि:सन्दह ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूँ, मैं केवल इन्द्रियोंके द्वारा कार्य होने न होने का साक्षी, द्रष्टा मात्र हूँ ।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
इत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ।।

– १८/१७ गीता

जिस पुरुष के अन्तःकरण में, 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा अभिमान नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थों में और कर्मों में लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकों के भोगों को भोगकर अथवा लोकोंको हनुमान व अर्जुन की तरह मार कर भी वास्तव में न तो वह किसी को मारता है और न भोगता है । इसप्रकार जो अपने को

असंग निष्क्रिय, अकर्ता–अभोक्ता भाव में दृढ़ता से स्थिर हो चुका है वह ज्ञानी जीवन्मुक्त है ।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ।।

– १४/१९ गीता

जब विवेकी मनुष्य तीनों गुणों के सिवाय अपने को कर्ता नहीं देखता है और गुणों से परे अपने को आत्मा रूप से अनुभव करता है, तब वह ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त हो जाता है ।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः ।
मूढ़ोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।।

७/२५ गीता

अपनी योग माया से छिपा हुआ मैं किसी के सम्मुख प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ । किन्तु अज्ञानी लोग अपने मनो कामना को पूर्ण करालेने की भ्रान्ति वश नाना आकारों की रचना कर यह अज्ञानी जन समुदाय जन्मरहित, अविनाशी परमात्मा को मनुष्य रूप जन्मने–

मरनेवाला मान, रामनवमी, जन्माष्टमी आदि नाना महोत्सव मनाते रहते हैं । यह अविनाशी ब्रह्म का जन्मोंत्सव मनाने वाले ही परमात्मा को मरा मानते हैं ।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।।

– ७/२४ गीता

बुद्धिहीन पुरुष मेरे सर्वोत्तम निराकार, असंग, अविनाशी परमभाव को न जानते हुए मन–इन्द्रियों से परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा को मनुष्य की भाँति जन्माकर व्यक्ति भाव को प्राप्त हुआ मानते हैं और मेरे मित्र, शत्रु, सगे–सम्बन्धी, धन, पुत्र, परिवार, राग–द्वेष की मुझ में कल्पना करते हैं ।

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ।।

– ९/२५ गीता

परन्तु उन अल्प बुद्धिवालों का वह पूजा–पाठ, यज्ञ, दान, तीर्थ, मन्दिर से मिलनेवाला फल भी नाशवान्

होता है । वे देवताओं को पूजने वाले देवता को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजनेवाले पितरों को, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं । इस प्रकार भक्ति के प्रभाव से ब्रह्मलोक पर्यन्त जाकर उन्हें लौट इस मृत्युलोक में पुनः आना पड़ता है । मेरे भक्त मुझ को ही प्राप्त होते हैं । मेरे भक्तों का पुनर्जन्म नहीं होता है ।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।।

– ९/२९ गीता

मैं सब भूतों में सम भाव से व्यापक हूँ । न कोई मेरा अप्रिय है, न प्रिय है परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं वे मुझमें और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।

– ९/३० गीता

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको ही सोऽहम् भाव से भजता है, तो उसे साधु ही समझना चाहिये, भले ही अज्ञान काल में

वह चोर, व्यभिचारी, हत्यारा नीच कर्म करनेवाला ही क्यों न हो । क्योंकि अब वह यथार्थ निश्चय वाला हो गया है । अर्थात् उसने भली–भाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन चिन्तन के समान अन्य कुछ नहीं है एवं दुष्कर्मों का फल दुर्गति ही है ।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ।।

– ४/३६ गीता

यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप समुद्र से भली भाँति तर जायगा ।

यथैधांसि समिद्धोऽग्नि भर्स्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।।

– ४/३७ गीता

क्योंकि जैसे प्रज्वलित अग्नि ईन्धनों को भस्ममय कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण पुण्य–पापों को भस्म करदेता है ।

युञ्जन्नैवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्सन्तं सुखमश्नुते ।।

– ६/२८ गीता

वह पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ अर्थात् सोऽहम् भाव द्वारा सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति रूप अनन्त आनन्द का अनुभव करता है ।।

मेरे भक्त के लक्षण

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एवच ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ।।

–१२/१३ गीता

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।

–१२/१४ गीता

जो सब प्राणियोंमें द्वेषभाव एवं स्वार्थभाव से रहित और सबका प्रेमी निःस्वार्थी, मित्र भाववाला तथा दयालु और ममता रहित रहता है, वह अहंकार रहित, सुख–

दुःखकी प्राप्ति में सम, क्षमाशील, निरन्तर लाभ–हानि में सन्तुष्ट रहता है, मन व इन्द्रियों सहित शरीर को वशमें किये हुए, दृढ़ निश्चयवाला, मुझमें अर्पित मन–बुद्धिवाला जो ज्ञानी भक्त है, वह मुझे प्रिय है ।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।।

– १२/१५ गीता

जिससे कोई भी प्राणी उद्विग्न (क्षुब्ध) नहीं होता और जो स्वयं भी किसी प्राणीसे उद्विग्न नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष अर्थात् दूसरे की उन्नती देखकर संताप व ईर्षा न करने वाला, भय और उद्वेग (हलचल) – से रहित है, वह ज्ञानी भक्त मुझे प्रिय है ।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।

– १२/१६ गीता

जो अपेक्षा (आवश्यकता) – से रहित, बाहर–भीतर से पवित्र अर्थात् सत्यता पूर्वक शुद्ध व्यवहार से

द्रव्य की शुद्धि और उसके अन्न व धन से जीवन निर्वाह करता है । यथायोग्य उचित बर्ताव से आचरण की और जल, मृतिका से बाहर की शुद्धि करता है तथा राग–द्वेष, छल–कपट, असत्य आदि विकारों का नाश होकर अन्तःकरण को स्वच्छ रखता है । चतुर अर्थात् जिस लक्ष्य प्राप्ति के लिये जीवन मिला था, वह आत्म साक्षात्कार के कार्य को करने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहता है । उदासीन, व्यथासे रहित और सभी आरम्भोंका अर्थात् नये–नये कर्मोंके कर्ता पन के अभिमान का त्यागी तथा नये–नये सभी कर्मों के आरम्भका सर्वथा त्यागी है, वह ज्ञानी भक्त मुझे प्रिय है ।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।।

– १२/१७ गीता

जो किसी इष्ट व बहुमूल्य वस्तु को पाकर न कभी हर्षित होता है, न इष्ट प्राप्ति के पदार्थ में रुकावट तथा चोरी करने वाले के प्रति न द्वेष करता है, न शोक करता है, न

किसी पदार्थ की कामना करता है । जो यह करने योग्य कर्म मैंने क्यों नहीं किया और यह नहीं करने योग्य कर्म मैंने क्यों किया, इस प्रकार शुभ–अशुभ कर्मोंका त्यागी है, वह भक्तिमान् ज्ञानी मुझे प्रिय है ।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।।

–१२/१८, १९ गीता

जो निष्ठावान शत्रु और मित्रमें तथा मान–अपमान में सम है और शीत–उष्ण (शरीरकी अनुकूलता–प्रतिकूलता) तथा सुख–दुःख (मन–बुद्धिकी अनुकूलता प्रतिकूलता) – में सम है एवं आसक्ति रहित होता है । जो निन्दा–स्तुति को समान समझनेवाला, मननशील, जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होने न होने में सन्तुष्ट रहता है, रहनेके स्थान तथा शरीर में ममता–आसक्तिसे रहित और स्थिर बुद्धिवाला है, वह भक्तिमान् ज्ञानी मुझे प्रिय है ।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।

– १३/७ गीता

हे अर्जुन ! श्रेष्ठ कार्य करके भी अपनी श्रेष्ठता, मान, बड़ाई का मन में अभाव रहना, तथा जैसी अपनी घर की, मन की स्थिति है, उस को वैसा ही सबके सम्मुख प्रकट करदेता, प्राणी मात्र में एक परमात्मा का भाव रखते हुए किसी छोटे से छोटे जीव जन्तु को, अपने से कमजोर व गरीब व्यक्ति को किसी प्रकार कष्ट नहीं पहुँचाता है, सामर्थ्य होते हुए भी अपने प्रति अपराध करने वाले को क्षमा करना तथा मन, वाणी की सरलता, श्रद्धा, विश्वास सहित सद्गुरु की सेवा करता है, अन्तःकरण का अनित्य संसार के प्रति सुख बुद्धि का न होना, भीतर–बाहर की शुद्धि तथा इन्द्रियाँ व मन का निग्रह करना यह दैवी सम्पदा वाले भक्त के लक्षण है ।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।।

१३/८ गीता

जिस साधक के मन में इस लोक के विषय भोगों से ब्रह्मादिक लोक के सुख भोगों के पदार्थ के प्रति वैराग्य और जाति, आश्रम, विद्या, धन, पद आदि में मैं सर्व से श्रेष्ठ हूँ, इस प्रकार के अहंकार का अभाव एवं जन्म–मृत्यु, जरा–व्याधि में जो सर्वदा दुःखों का ही विचार रखता है ।

असक्तिनरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।।

– १३/९ गीता

जिस के मन में धन, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र एवं सम्बन्धीजनों के प्रति यह सब मेरे हैं, इस प्रकार अहंता–ममता का अभाव रहता है, तथा अनुकूल पदार्थ धन, पुत्रादि के प्राप्ति में न हर्ष करता है व अनुकूल धन, पुत्रादि के नष्ट होने पर दुःख भी नहीं करता है अर्थात् दुःख–सुख में समत्व बुद्धि रखता है ।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।।

१३/१० गीता

जिसके मन में मुझ परमेश्वर में एकी भाव से स्थिति अर्थात् भगवान मेरी आत्मा है, मैं वही ब्रह्म हूँ इस प्रकार से अव्यभिचारिणी भक्ति रहती है अर्थात् आत्म देव को छोड़ अन्य देवी–देवता की उपासना से उदासीन तथा मन से सदा आत्म चिन्तन परायण रहता है । ऐसे एकान्त और जन समुदाय से दूर शुद्ध देश में रहने का जिसका स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय से उदासीन रहता है ।

अध्यात्मज्ञाननित्वत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ।।

१३/११ गीता

जिस साधक का मन आत्मज्ञान में सर्वदा लगा रहता है और जीव ब्रह्म एकत्व रूप सर्वत्र दर्शन करता रहता है, यह सब तो ज्ञान है और जो जीव ब्रह्म के प्रति भेद भ्रान्ति मन में रखता है और अन्य देवी–देवता की उपासना करता है, वह सब अज्ञानी के लक्षण है ।

भगवान अपने प्रिय भक्त में जो दैवी सम्पदा के गुणों के धारण करने की बात यहाँ तक बतलाई है इस हेतु अपने चंचल, मलिन, अशान्त, विकारी मन को सर्व प्रथम निर्मल व निर्विकार करना होगा। इसके लिये मुमुक्षु केवल गीता उपनिषद, ब्रह्मसूत्र पढ़कर, सुनकर अपने को कृत–कृत्य न मान बैठे बल्कि प्रतिदिन सुबह–शाम/ रात्रि आधाघंटा के लिये एकान्त शान्त स्थान पर अपने नेत्र बन्द कर अचल आसन में बैठ केवल आने जाने वाले शुद्ध श्वाँस को अर्थात् बिना प्राणायाम, बिना मन्त्र संयोग के देखते रहे।

यह श्वाँसों का आना जाना मेरा दृश्य है मैं इनका द्रष्टा, साक्षी, आत्मा, असंग इनसे निर्लेप हूँ। यह वेदान्त ज्ञान प्राप्त होने पर इसका दृढ़ अभ्यास करने हेतु एक बार तो विपश्यना केन्द्र में जाकर १० दिन का विपश्यना शिविर अवश्य ही करना चाहिये। तभी मन को निर्मल, निर्विकार, राग–द्वेष से मुक्त करने की कला सीख सकेंगे। केवल वाचिक ज्ञान धारण कर अपने को मुक्त न मान बैठें। अतः अपने को अधोगति में जाने से बचावें।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

१८/६६ गीता

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा । मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर ।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ।।

– १०/१७ गीता

हे योगेश्वर ! मैं तो आपके विराट् रूप को देख कर उलझन में पड़ गया हूँ कि आपका कौनसा रूप मेरे लिये कल्याणकारी होगा ? अतः अब आप मेरी योग्यतानुसार मुझे बताइये कि मैं आपके किस रूप का चिन्तन निरन्तर कर सकूँगा । आप किस भावसे मेरे द्वारा चिन्तन करने योग्य है ?

मेरी प्राप्ति का स्थान

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ।।

– १३/१७ गीता

यह आत्मस्वरूप पर ब्रह्म ज्योतियों का ज्योति, ज्ञान स्वरूप, विष्णु, राम, कृष्ण, हनुमानादि नाम रूप माया आकार के पीछे छिपा बताया जाता है, वह परमात्मा अनुभव स्वरूप, मैं रूप से जानने के योग्य एवं तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य अति पवित्र, अति उत्तम प्रत्यक्ष जीवित काल में फल देने वाला, साधन करने में अत्यन्त सरल है और सभी जीवों के हृदय में अविनाशी रूप में स्थित है ।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशय स्थितः।
अहमादिश्च मध्मं च भूतानामन्त एव च ।।

१०/२०गीता

हे अर्जुन ! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त

भी मैं ही हूँ । अतः तू अपने को सोऽहम् आत्मरूप से निरन्तर ध्यान कर ।

पाण्डवानां धनञ्जयः ।। – १०/३७ गीता

मैं ही तेरा सखा, पाण्डवों में धनञ्जय अर्थात् तेरे रूप में मैं ही हूँ।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।

– ६/३० गीता

जो ज्ञानी सब में मुझे देखता है और मुझमें सबको देखता है, उसके लिये मैं कभी अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता है। अर्थात् हम एक दूसरे से कभी दूर नहीं होते है। जैसा पौधा व बगीचा, वृक्ष और जंगल, घर व ग्राम, शरीर व संसार, प्राण व पवन, एक ही है ।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ।।

– १३/३१ गीता

हे अर्जुन ! अनादि होने से और निर्गुण होने से यह अविनाशी परमात्मा नवद्वार वाले पुरी शरीर में स्थित होने पर भी वास्तव में न तो कुछ करता है और न लिप्त होता है ।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ।।

१३/३२ गीता

जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होने के कारण कहीं लिप्त नहीं होता, वैसे ही देह में सर्वत्र व्याप्त देही आत्मा निर्गुण होने के कारण देह के गुणों एवं विकारों से लिप्त नहीं होता ।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ।।

– १३/३३ गीता

हे भारत ! (ज्ञान में रत आत्मन्) जैसे एक ही सूर्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है उसी तरह एक ही आत्मा सम्पूर्ण चराचर को प्रकाशित करता है ।

अर्जुन को शान्त, चुप देख भगवान ने पूछा –

कश्चिदेतच्छ्रुतं पार्थत्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ।।

१८/७२ गीता

हे पार्थ ! क्या तूने मेरे इस ज्ञानोपदेश को एकाग्र चित्त से श्रवण किया है? और हे अर्जुन, क्या तेरा अज्ञान जनित मोह नष्ट होगया है ? अतः मुझे बता कि तूने अभीतक श्रवण किये हुए मेरे गीता उपदेश का क्या तात्पर्य ग्रहण किया है ?

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गत सन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।

१८/७३

अर्जुन बोले – हे प्रभो ! मैं सत्य कहता हूँ आपसे पूर्व मैंने अनेकों सन्तों का उपदेश ग्रहण किया था किन्तु कोई निश्चित समाधान नहीं मिल पाया था किन्तु अभी आपके द्वारा जैसा सुना, समझा ऐसा तो कभी नहीं, कहीं नहीं एवं किसी के द्वारा अनुभव नहीं हो सका

था । हे अच्युत् ! आपकी कृपा से अब मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने अपने अनादि से भूले आत्म स्वरूप की स्मृति को प्राप्त कर लिया है कि मैं यह जन्म, मृत्यु धर्मा षड्‌ विकारी नाम, रूप देहधारी क्षत्रिय अर्जुन नहीं हूँ बल्कि देह के समस्त धर्मों से रहित असंग, निराकार, अजन्मा, अविनाशी, केवल, द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ। अब मैं संशय रहित होकर स्थित हूँ । अतः आपकी आज्ञा का पालन करूँगा ।

भगवान ने मन में सोचा कि –

शिष्य के भीतर उसका ही प्रतिविम्ब है जिसका प्रतिविम्ब गुरु के भीतर है — भेद बस इतना ही है कि गुरु जानता है पर शिष्य अभी यह नहीं जानता है और एक दिन शिष्य भी जान लेगा क्योंकि शिष्य सत्य के मार्ग पर चल निकला है । जानने का न जानने का ही बस भेद दोनों में है । सत्ता दृष्टि से दोनों में एक ही सनातन सच्चिदानन्द ब्रह्म फैला हुआ, रमा हुआ, घुसा हुआ, समाया हुआ है ।

जिसने परमात्मा को, सत्य को पा लिया है, जान लिया है, वह बाँटने के लिए ठहरा हुआ है । पा लेना तो अत्यन्त कठिन कार्य है ही किन्तु उससे ज्यादा कठिन कार्य बाँटने का है । यह बड़ा कठिन अकर्म है यहाँ कोई कर्ता नहीं है । यह अत्यन्त जोखिम का, बदनामी का, अपमान का निन्दा का, जहर पीने का, सूली की उपलब्धि का, हत्या का अपनी मृत्यु का कार्य है ।

अब मुझे कोई सूली पर चढ़ा भी नहीं सकता । यह कार्य मैं स्वयं कर ही चुका हूँ । मेरा कोई नाम रूप का अस्तित्त्व शेष ही नहीं रहा, तब कौन किसे सूली पर चढ़ा मार सकेगा ? मैंने जान लिया है कि जैसा मैं लोगों को दिखता हूँ वह मैं नहीं हूँ । जहाँ तक कोई मेरे साथ जो कुछ भी बुरा से बुरा कर सकता है, वहाँ तक मेरा होना नहीं है और जो कुछ मैं हूँ उसे कोई देख, छू या मार नहीं सकता, क्योंकि मैं अरूपी, अजन्मा, अविनाशी आत्मा हूँ ।

मैं मरनेवाला नाम रूप शरीर नहीं हूँ, इसलिये मुझ से छीना जाने वाला कुछ भी नहीं है । और जो छीना जा सकता था वह सद्‌गुरु कृपा से उसका स्वयं ही परित्याग कर चुका हूँ। अब मुझको परिचय, पहचान, यश, प्रशंसा, भय, मृत्यु, बदनामी, अपमान, हत्या, मान–अपमान का भाव लुप्त हो गया है ।

आज तक मैंने कोई भी कार्य नहीं किया है जो कार्य हुआ है वह मेरे मन व देह के संयोग से हुआ है, मैं आत्मा स्फटिक् मणि अथवा सूर्य की तरह असंग, निष्क्रिय हूँ।

अर्जुन अपना अनुभव प्रकाश कर रहा है कि हे प्रभो ! पाने जैसा पा लिया, खोने जैसा खो गया है । जो पराया था वही खोया है । और जो पाया है वह कोई नूतन नहीं । वही पाया है जो पहले से ही पाया हुआ था । सिर्फ मैं उससे बेखबर, अनजान, अपरिचित था और जो खोया था वह अपना था ही नहीं तो दुःख भी

नहीं । केवल अपने होने की मिथ्या धारणा थी वह अब आपकी कृपा से राजा शिखरध्वज की तरह भ्रान्ति दूर हो गई । जो छूट गया वह कल्पित था । पिता–माता–पत्नी–पति, परविार, सम्पत्ति, समाज, शिक्षा, पद, प्रतिष्ठा, आश्रम, जाति, नाम धर्म, मान्यताएं, धारणाएं संगृहित मिथ्याधारणा, मान्यताएं का विश्वास ही खोया है । लेकिन अज्ञानी व्यक्ति को इस अद्‍भूत, अनुपम, आत्मज्ञान के न होने से अभी उनके पास खोने को बहुत कुछ है । इसलिए देहाभिमानी भयभीत रहते हैं । मैं तो अब इसे अधिकारी लोगों को कहूँगा जो सत्य मुझे लगेगा, चाहे मेरी निन्दा करे या स्तुति अब वह श्रोताओं की समस्या है ।

श्री भगवान ने कहा–

उद्धरेदात्मनात्मनं नात्मनमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।

– ६/५ गीता

अस्तु हे आत्मन् ! अपने द्वारा अपना संसार समुद्र से उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है ।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।

– ६/६ गीता

जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये वह आप ही शत्रु के सदृश शत्रुता में बर्तता है ।

अप्पो दीपो भव !

सभी ज्ञानी, बुद्ध हमें अपने पाँव पर खड़े होने के लिए कहते है और हम उन्हीं के पाँव पकड़ बैठ जाते है । वह हम से कहते हैं अपने जीवन के आप ही दीप बनो ।

ढूँढा उसे जाता है, जो खो गया हो । पाया उसे ही जा सकता है, जो पराया हो, अन्य हो, भिन्न हो जो खोया ही नहीं, उसे कहाँ ढूँढा जाय ? जो है ही उसे पाया नहीं बल्कि जाना जा सकेगा ।

स्वयं स्वयं को कैसे खो सकेगा ? और स्वयं स्वयं को पा भी कैसे सकेगा ? हाँ कोई दूसरा व्यक्ति या वस्तु हो तो उसे कहीं खोया या कहीं पाया जा सकेगा । आप भुलाना आपसे ।

अनन्य को खोजा नहीं जा सकता है । हाँ अनन्य हुआ जा सकता है । वह भी वहीं है जहाँ हम वस्तुतः हैं ।

स्वयं को खोजना अर्थात् परमात्मा को खोजना । स्वयं को खोजने का कार्य तो परमात्मा को खो देने जैसा

ही कार्य है । क्योंकि खोजने वाले की दृष्टि सदा अपने से बाहर किसी दूसरे पर ही रहती है वह स्वयं की ओर कभी नहीं देख सकेगा । परमात्मा को खोजना नहीं है । उसके प्रति जागना है कि वह 'मैं हूँ' वह न कहीं गया है न कहीं जा सकता है । 'वह' अभी है, यहाँ हैं, और मेरे रूप में है, तभी वह अखण्ड, सर्वव्यापक नित्य है । 'उसके' प्रति जागना है सोऽहम् रूप से कि वह मैं ही हूँ जिसे ढूँढ रहा था, ढूँढ रही थी ।

सोचें ! स्वप्न में आप नींद में कहीं भारत से बाहर किसी दूर देश में चले गये हैं और आपका आज ही सन्ध्या को लौटना है सभा, मिटिंग में अपनी अध्यक्षता का पद सम्भालना है । अब एक घंटे का समय बचा है ६ बज चुके हैं आप ३००० मील दूरी देश में हैं । क्या अब प्लेन का टिकिट या रेल टिकिट बुकिंग करे सकेंगे ? तो फिर आप समय पर लौट सकेंगे ? नहीं न ? बस आप को केवल जाग जाना है और आप पाओगे कि आप वहीं हो जहाँ पर आप को होना चाहिये ।

सत्य कोई वस्तु नहीं जो किसी को बाँट दी जाय । जो बाँटा जा सके, वितरण किया जा सके वह सत्य हीं नहीं, जिसका खण्ड या विभाजन किया जा सके । सत्य आकाशवत् अखण्ड एक अविभाजित तत्त्व है ।

सत्य को जाना भी नहीं जा सकता क्योंकि जिसे जाना जासकता है वह परिच्छिन्न होगा, पराया होगा या पृथक् होगा तभी जाना जा सकेगा । सत्य को जनाया भी नहीं जा सकता । जो जनाया जाता है वह जानने वाले से जनाया गया पदार्थ या व्यक्ति भिन्न होता है । जो भिन्न है वह सत्य नहीं हो सकता । सत्य को जानना हो तो स्वयं को ही सत्य होना पड़ेगा। नदी को सागर जानना है तो स्वयं समुद्र में सम्मिलित होना पड़ेगा । पृथक् रह कर नदी सागर को कभी नहीं जान सकेगी । सत्य की खोज, परमात्मा की खोज कोई भौतिक पदार्थ, खनिज पदार्थ, टापु स्थान की खोज की तरह अनित्य वस्तु नहीं है । सत्य को कहा भी नहीं जा सकेगा क्योंकि जो वाणी से कहा जाता है वह झूठा, अनित्य है ।

हे अर्जुन ! तेरी आत्मनिष्ठा श्रवण कर मेरा मन बहुत प्रसन्न हो रहा है । तू मेरे इस अमृत ज्ञान का सच्चा उत्तराधिकारी हुआ है ।

य इमं परम गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशय।।

१८/६८ गीता

जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवाद रूप गीता शास्त्र को पढ़ेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञान रूप यज्ञ से पूजित होऊँगा–ऐसा मेरा मत है।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ।।

१८/६९ गीता

उससे बढ़कर मेरा प्रियकार्य करने वाला देवता तथा मनुष्यों में कोई भी नहीं है तथा त्रैलोक्य भर में उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई होगा भी नहीं ।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।

१८/६७ गीता

हे अर्जुन ! मेरा यह रहस्यमय उपदेश किसी भी काल में न तो तप रहित मनुष्य से कहना चाहिये, न भक्ति रहित से और न बिना सुनने की इच्छा वाले से ही कहना चाहिये तथा जो मुझ श्रीकृष्ण की जीवन लीला को देखने वाले अथवा गुरु में दोष दृष्टि, निन्दा करने वाले को तो कभी मत कहना ।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशय।।

१८/६८ गीता

जो पुरुष मुझमें प्रेम करके अर्थात् आत्मा में प्रेम करके इस परम रहस्य युक्त उपदेश को मेरे भक्तों से कहेगा वह मुझको ही प्राप्त होगा – इस में कोई सन्देह नहीं है ।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।।

८/५ गीता

जो पुरुष अन्तकाल में भी मुझ आत्मा को ही स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करता है वह मेरे साक्षात्

स्वरूप को प्राप्त हो जाता है । इसमें किंचित् भी संशय नहीं है ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।।

९/२९ गीता

जो भक्त मुझको प्रेम से भजते है वे मुझ में हैं और मैं भी उन में प्रत्यक्ष प्रकट हूँ ।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।

– ६/३० गीता

जो ज्ञानी सब में मुझे देखता है और मुझमें सबको देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता है। अर्थात् हम एक दूसरे से कभी दूर नहीं होते हैं। जैसे पौधा व बगीचा, वृक्ष और जंगल, घर व ग्राम, शरीर व संसार, प्राण व पवन, एक ही है ।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।।

८/६ गीता

हे अर्जुन ! जीव मरण काल में जिस भाव में होता है वह उसी प्रकार के योनि को प्राप्त करलेता है। वह भक्त साधक श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेता है एवं वैराग्यवान् किसी धार्मिक पुरुष के घर में, ज्ञानवान् योगियों के घर में जन्म लेता है । जीव पिछले जन्म के कर्म, भक्ति, योग अथवा अदृढ़ ज्ञान के संस्कार को प्राप्त होकर आगे की भूमिका के अभ्यास में लग जाता है । जबकि तामसिक आहारी, निन्दनीय कर्म करने वाला अधोगति को प्राप्त होता है अर्थात् साँप, सूअर,कुत्ता, गधा, बिल्ली, बन्दर योनि को प्राप्त होता है । **'मरणे या मतिः स गतिः भवेत्'**।

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च ।।

८/७ गीता

तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ।।

८/२७ गीता

इसलिये हे अर्जुन ! तू सब समय, निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध कर अर्थात् जैसा तेरा प्रारब्ध भोग बन आया है उससे असंग रहता हुआ साक्षी भाव से देखता रह । न अपने को कर्ता जान न भोक्ता जान ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

स्वामी निरंजन ग्रंथावली

१. ज्ञानोदय, २. शान्तिपुष्प, ३. भूली बिसरी स्मृति, ४. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-१, ५. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-२,६. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-३,७. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-४,८. मैं अमृत का सागर,९. मैं ब्रह्म हूँ,१0. प्राणायाम,मुद्रा, ध्यान एवं वेदान्त पारिभाषिक शब्दकोश, ११. सीता गीता, १२. राम गीता, १३. गुरु गीता, १४. पंचदशी प्रश्नोत्तर दीपिका, १५. भागवत रहस्य, १६. आत्म साक्षात्कार, १७. मन की जाने राम, १८. योग वशिष्ठ सार, १९. निरंजन भजनामृत सरिता, २0. स्वरूप चिन्तन, २१. कर्म से मोक्ष नहीं , २२. श्रद्धा की प्रतिमा सद्गुरु, २३. अमृत बिन्दु, २४. उपनिषद् सिद्धान्त एवं वेदान्त रत्नावली, २५. सहज समाधि, २६. ज्ञान ज्योति, २७. कबीर साखी संकलन, २८. सहज ध्यान २९. हे राम ! उठो जागो, ३0. सद्गुरु कौन ?, ३१. श्रीराम चिन्तन ३२. तत्त्वमसि ३३. साक्षी की खोज ३४. आत्मज्ञान के हीरे मोती, ३५. अनमोल वचनामृत ३६. लाख रोगों की एक दवा ३७. हंस गीता ३८. आत्मज्ञान के लिये उपयोगी चित्रावली ३९. मेरी नहीं उपनिषद् की सुनों ४0. परमात्मा की सहज प्राप्ति ४१, जानो फिर मनो, ४२, विचार हि मार्ग, ४३. ज्ञान बिना मुक्ति नहीं, ४४. आत्म गीता, ४५. शिव गीता सार, ४६. आत्म प्रबोध संहिता,४७ सर्बोपनिषद् गीता सार, ४८. केवल विस्मृति, ४९.